जनसत्ता

सामरिक शक्ति

प्रतिरक्षा के क्षेत्र में शक्ति अर्जित करने के लिए सैन्य बलों को अत्याधुनिक हथियारों से लैस करना जरूरी होता है। इस मामले में भारत ने अपनी ताकत काफी बढ़ाई है, पर हकीकत यह भी है कि विश्व पैमाने पर हमारी सेनाओं के पास साजो-सामान की भारी कमी है। इस लिहाज से रक्षा खरीद परिषद की बैठक में युद्धक विमानों और हथियारों की खरीद को मिली मंजूरी से निस्संदेह हमारी सेनाओं का मनोबल बढ़ेगा। इस खरीद में जल और वायु दोनों सेनाओं को ध्यान में रख कर उपकरणों को शामिल किया गया है। साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि आगे चल कर ऐसे अत्याधुनिक हथियार बनाने की तकनीक हम खुद विकसित कर सकें। इसलिए प्रस्तावित उपकरणों और विमानों आदि की खरीद में तकनीक हासिल करने का भी बिंदु रखा गया है। इसमें पनडुब्बीरोधी युद्धक विमान पी8आइ की खरीद को भी मंजूरी दी गई है, जिसका इस्तेमाल नौसेना तटीय क्षेत्रों में निगरानी के लिए करेगी। इसके अलावा असाल्ट राइफलों की खरीद होगी, जिनके जरिए सैनिक अंधेरे में भी और सभी तरह के मौसम में अचूक निशाना साध सकेंगे। इन प्रणालियों के लिए जरूरी उपकरण देश में ही बनाए जाएंगे, जिन्हें रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन यानी डीआरडीओ लगाएगा।

माना जा रहा है कि इन विमानों, राइफलों और अन्य उपकरणों के आने के बाद तटीय सुरक्षा के मामले में सेनाएं अधिक मजबूत हो सकेंगी। भारत की प्राथमिकता अभी आतंकवाद से पार पाने के लिए खुद को चाकचौबंद करने की है। इसलिए कुछ दिनों पहले बांग्लादेश के साथ करार हुआ कि वहां भारत अपने तटीय निगरानी केंद्र स्थापित करेगा, ताकि घुसपैठ और आतंकवादी गतिविधियों पर नकेल कसी जा सके। इस लिहाज से ये उपकरण उसमें मददगार साबित होंगे। इसके अलावा समुद्री सीमा में चीन, पाकिस्तान जैसे देशों से भारत को चुनौती मिलती रहती है। वायु क्षेत्र में तो रफाल जैसे विमानों की खरीद कर भारत ने अपनी सामरिक ताकत बढ़ा ली है, पर समुद्री सीमा में चुनौतियां बनी हुई हैं। वहां केवल पनडुब्बियों या फिर तटीय निगरानी पोतों के जरिए कामयाबी का भरोसा नहीं किया जा सकता। समुद्री प्रतिरक्षा क्षेत्र में भी काफी तकनीकी विकास हो चुका है। ऐसे में आसमान से भी समुद्री गतिविधियों पर नजर रखने और दुश्मन की पनडुब्बियों पर निशाना साधने की दरकार बढ़ गई है। इसलिए इन उपकरणों का महत्त्व निर्विवाद है।

किसी भी देश की सेना की ताकत सिर्फ इस बात में नहीं होती कि उसके पास कितने अत्याधुनिक हथियार हैं, बल्कि यह भी होती है कि वह ऐसे हथियार बनाने में कितना सक्षम है। इस लिहाज से सरकार लगातार डीआरडीओ को समृद्ध करने का प्रयास करती रही है। मगर अभी तक का अनुभव यही है कि अत्याधुनिक हथियारों के मामले में भारत को विदेशी कंपनियों का मुंह देखना पड़ता है। बाहर से हथियार और दूसरे सैन्य साजो-सामान खरीदना खासा महंगा और पेचीदा सौदा होता है। इस मामले में काफी सावधानी भी बरतनी पड़ती है। इसलिए कोशिश यही होती है कि जो भी साजो-सामान विदेशी कंपनियों से खरीदे जाएं, उनकी तकनीक भी आयातित की जाए, ताकि भविष्य में पैदा होने वाली अड़चनों को दूर करने में आसानी हो और डीआरडीओ को उन तकनीकों के अध्ययन और विकास में मदद मिल सके। इस लिहाज से नई रक्षा की खरीद को दी गई मंजूरी सावधानीपूर्वक उठाया गया कदम है। रफाल विमानों की खरीद को लेकर उठे विवादों से भी शायद कुछ सबक लिया गया होगा।

आभासी की हकीकत

अब हकीकत उजागर होने लगी है कि हाल के वर्षों में अमूमन हर हाथ में मौजूद स्मार्टफोन ने किस स्तर पर समाज के सहज आचार-विचार को प्रभावित किया है। लगभग चारों तरफ फैल गए सोशल मीडिया ने सामाजिक माहौल को कितना प्रभावित किया है, यह लोगों की समझ और उनके बर्ताव तक में झलकने लगा है। हालत यह है कि वे वयस्क हों, किशोर या फिर बच्चे, आज आधुनिक तकनीकी के इन संसाधनों की वजह से समाज ही नहीं, परिवार तक से कटते जा रहे हैं और इसके खमियाजे का उन्हें अहसास भी नहीं है। यह समस्या सरकारों की चिंता में भी शुमार नहीं हो पा रही है। जबकि मोबाइल फोन और कम्प्यूटर के स्क्रीन का दायरा अब जिस तरह बच्चों को भी बुरी तरह चपेट में ले रहा है, उसके संकेत और निष्कर्ष आने वाले वक्त की बेहद चिंताजनक तस्वीर पेश करते हैं। अमेरिका के वाशिंगटन शहर में कराए गए एक ताजा अध्ययन में पाया गया है कि बच्चों के भीतर मोबाइल फोन और कम्प्यूटर पर ज्यादा समय बिताने की वजह से चिंता के लक्षण बढ़ रहे हैं। बारह से सोलह साल के बच्चों और किशोरों के बीच कराए गए इस अध्ययन के मुताबिक जब किशोरों और बच्चों ने सोशल मीडिया, टीवी, मोबाइल और कम्प्यूटर में गुम रहने की अवधि कम की तो उनके भीतर चिंता के लक्षण कम होते पाए गए।

जाहिर है, पहले छोटे परदे की शक्ल में टीवी ने बच्चों के स्कूल के बाद अपने दोस्तों के साथ खेलने-कूदने का वक्त खा लिया, फिर उस परदे के हाथ में सिमटने यानी स्मार्टफोन में व्यस्तता ने रही-सही कसर पूरी कर दी। इन आधुनिक तकनीकी संसाधनों या गजटों ने बच्चों और किशोरों के दिमाग को इतना ज्यादा व्यस्त कर दिया कि उनके पास जीवन के दूसरे पहलुओं पर सोचने की गुंजाइश ही खत्म हो गई। आंखों और दिमाग के सोचने-समझने की समूची प्रक्रिया स्मार्टफोन और कम्प्यूटर के स्क्रीन में इस कदर उलझ रही है कि बाकी वैसे मसले सोचने के दायरे से भी पीछे छूट रहे हैं, जो जीवन और भविष्य को गहरे प्रभावित करते हैं। नतीजतन, जब अचानक ही किसी रोजमर्रा की दूसरी बातों का सामना करना पड़ जाता है, तो बच्चे सहजता से उससे नहीं निपट पाते हैं और इस तरह उनके दिमाग में चिंता घर बनाने लगती है। यह बेवजह नहीं है कि आजकल फोन और कम्प्यूटर स्क्रीन को ही दुनिया मानने वाले बहुत सारे बच्चे आधुनिक तकनीकी के इस्तेमाल में तो काफी तेज-तर्रार होते हैं, लेकिन बहुत छोटी समस्या पैदा हो जाने पर भी आत्मविश्वास के मोर्चे पर खुद को कमजोर पाते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि सोशल मीडिया के अलग-अलग मंच अपनी भावनाएं, विचार और यहां तक कि समस्याएं साझा करने की सुविधा मुहैया कराते हैं, पर एक आभासी दुनिया में इस व्यस्तता के साथ ही बच्चों की निजी दुनिया सिमटने लगती है। अपने विचारों पर प्रत्यक्ष रूप से समय पर उचित प्रतिक्रिया नहीं होने की वजह से उसके भीतर निराशा के भाव का संचार होता है। अगर समय पर इसकी पहचान करके इससे निटपने की कोशिश नहीं होती है तो यह अवसाद में तब्दील हो जाता है। स्मार्टफोन और कम्प्यूटर पर व्यस्तता किशोरों में कई तरह की मनोवैज्ञानिक समस्याएं पैदा कर रही है। विडंबना यह है कि जो स्थितियां भावी समाज की जमीन तैयार कर रही हैं, उसमें आई विकृतियां सरकारों और समूची व्यवस्था के लिए चिंता का विषय नहीं बन पा रही हैं।

कल्पमेधा

दुष्ट बुद्धि दूसरों के अच्छे गुणों को जानने की
वैसी इच्छा नहीं रखता, जैसी उनके
अवगुणों को जानने की।
-महाभारत

सैन्य विलय का औचित्य

विवेक ओझा

सेना के साथ समन्वय और सहयोग के जरिए ही भारत के भूक्षेत्र के अंतर्गत सामूहिक सुरक्षा के भावों का बीजारोपण संभव हो सकेगा। अगर केवल आईटीबीपी को अनन्य रूप से पूर्वोत्तर भारतीय सीमाओं, खासकर म्यांमा सीमा की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी प्रस्तावित विलय के बाद मिल जाएगी, जो पहले से ही अलग-अलग किस्म के दायित्वों से संबद्ध है, तो क्या पूर्वोत्तर भारत की सुरक्षा रणनीति अचूक और मारक हो पाएगी!

आईटीबीपी में असम राइफल्स के विलय के गृह मंत्रालय के प्रस्ताव को आंतरिक सुरक्षा प्रबंधन की शक्तियों के केंद्रीकरण के प्रयास के रूप में देखा जा रहा है। इसका तर्कपूर्ण परीक्षण शुरू हुआ है कि भारतीय सेना समर्थित असम राइफल्स की स्वायत्तता और अधिकार क्षेत्र का संरक्षण देश के सीमा प्रबंधन में कितना जरूरी है।

एक ऐसे समय में जब भारत के भिन्न-भिन्न अर्ध सैनिक बल और सुरक्षा एजेंसियां अंतरराष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा में मुस्तैदी से लगी हों, नक्सलियों और माओवादियों से निपटने में अपनी शहादत दे रही हों, सीमापार आतंकवाद, तस्करी, संगठित अपराधों को रोकने के काम में लगी हों, ऐसे में अगर यह सूचना सामने आए कि गृह मंत्रालय ने इंडो तिब्बतन पुलिस बल में देश के सबसे पुराने अर्ध सैनिक बल असम राइफल्स के विलय का प्रस्ताव कर दिया है, तो इस बात का मूल्यांकन जरूरी हो जाता है कि इससे भारत के सुरक्षा प्रतिरक्षा तंत्र को क्या लाभ मिलेगा। असम राइफल्स पर वर्तमान समय में प्रशासकीय नियंत्रण तो गृह मंत्रालय का है, लेकिन इस पर परिचालनात्मक (ऑपरेशनल) नियंत्रण भारतीय सेना और रक्षा मंत्रालय का है। इस प्रकार देश का सबसे पुराना अर्ध सैनिक बल दोहरे नियंत्रण में अपना कार्य कर रहा है। कहते हैं कि दोहरे नियंत्रण की स्थिति में भूमिका द्वंद्व का उभरना स्वाभाविक है।

गृह मंत्रालय 2009 से अब तक सात बार इस विलय का प्रस्ताव कर चुका है, जिसका मूल उद्देश्य असम राइफल्स पर परिचालनात्मक नियंत्रण को अपने अधिकार में लेना है। 2017 में इसी के मद्देनजर रक्षा मंत्रालय को प्रस्ताव भेजा गया था कि असम राइफल्स की कुल छियालीस बटालियनों में से पच्चीस का विलय गृह मंत्रालय में किया जाए और शेष इक्कीस को भारतीय सेना के अधीन रखा जाए। इससे एक कदम और आगे बढ़ते हुए दिसंबर, 2018 में गृह मंत्रालय ने प्रस्ताव किया कि असम राइफल्स की सभी छियालीस बटालियनों का विलय आईटीबीपी में कर दिया जाए। पिछले दो-तीन माह से यह मुद्दा विवाद का विषय बना हुआ है कि क्या सेना के नियंत्रण वाले असम राइफल्स की स्वायत्तता का क्षरण तो नहीं हो जाएगा? सितंबर, 2019 में गृहमंत्री इस विषय को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली कैबिनेट कमेटी ऑन सिक्योरिटी के संज्ञान में लाए। अब इस समिति द्वारा इस प्रस्ताव का परीक्षण किया जाना है कि असम राइफल्स का आईटीबीपी में विलय किया जाए या नहीं।

भारतीय सेना इस प्रस्ताव के खिलाफ है और उसने स्पष्ट किया है कि इस विलय प्रस्ताव का भारत के सीमा प्रबंधन, पूर्वोत्तर भारत सुरक्षा परिदृश्य, भारत-चीन सीमा की निगरानी पर नकारात्मक असर पड़ेगा। सेना का कहना है कि इस निर्णय से भारत-चीन सीमा पर वास्तविक नियंत्रण रेखा की निगरानी, चौकसी करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। सेना ने यह भी तर्क दिया है कि इस विलय से जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद निरोधी अभियानों पर भी नकारात्मक असर पड़ेगा। भारत म्यांमा सीमा की सुरक्षा और वामपंथी उग्रवाद प्रभावित जिलों में नक्सलवाद और माओवाद से निपटने का हवाला देते हुए सेना ने कहा है कि विलय प्रस्ताव तार्किक नहीं है। उल्लेखनीय है कि जनवरी, 2019 में असम राइफल्स ने म्यांमा की सेना के साथ मिल कर ऑपरेशन सनराइज चलाया, जिसमें पूर्वोत्तर के उग्रवादी और विप्लवकारी समूहों के अड्डों को नष्ट किया गया और इनके कैडरों को गिरफ्तार किया गया। गौरतलब है कि फ्रेंड्स ऑफ दि नॉर्थ ईस्ट और सेंटिनेल्स ऑफ दि नॉर्थ ईस्ट की उपाधि से विभूषित असम राइफल्स भारत का सबसे पुराना अर्ध सैनिक बल है। इसके अस्सी प्रतिशत अधिकारी भारतीय सेना से हैं। पचपन हजार जवानों वाला असम राइफल्स वर्तमान में 1640 किलोमीटर लंबी भारत म्यांमा सीमा की चौकसी, अरुणाचल प्रदेश और चीन की सीमा पर निगरानी के दायित्व का निर्वहन कर रहा है। आजादी के बाद कुछ ही समय में इसे जनता का दाहिना हाथ और सेना का बायां हाथ कहा जाने लगा था। 1962 के भारत-चीन युद्ध, 1965 और 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध और 1987 में श्रीलंका में शांतिवाहिनी सेना और ऑपरेशन पवन में अपनी सहभागिता दर्ज की थी।

विलय के मुद्दे पर असम राइफल्स एक्स सर्विसमेन वेलफेयर एसोसिएशन ने असम राइफल्स पर दोहरे नियंत्रण से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों के मद्देनजर एक याचिका दायर की थी। इन चुनौतियों में असम राइफल्स के सेवानिवृत्त कर्मचारियों की पेंशन से जुड़ा मामला शामिल था। याचिकाकर्ता ने यह भी कहा था कि असम राइफल्स का उद्देश्य और उसके कार्य सैन्य और अर्ध सैनिक बल वाले हैं और इसका पुलिस बल के रूप में श्रेणीबद्ध करना अतार्किक, मनमाना और कर्मचारियों के अधिकारों का उल्लंघन करने वाला है। याचिका में असम राइफल्स को पूर्ण रूप से प्रतिरक्षा मंत्रालय के नियंत्रण में रखने की मांग की गई और तर्क दिया गया कि भारत सरकार (कार्य आबंटन) नियम, 1961 में किसी सुरक्षा बल पर दोहरे नियंत्रण का प्रावधान नहीं है। गौरतलब है कि असम राइफल्स एकमात्र ऐसा अर्द्ध सैनिक बल है, जो आर्मी कमांडर्स के अंतर्गत सैन्य दायित्व का निर्वहन करता है और इसके लिए इसके कोई अतिरिक्त सुविधा नहीं मिलती। हालांकि 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद सेना को इस पर ऑपरेशनल कंट्रोल दिया गया था, लेकिन तीन वर्ष बाद तय किया गया कि गृह मंत्रालय के पास इसका प्रशासकीय नियंत्रण रहेगा।

असम राइफल्स के आईटीबीपी में विलय की चिंता के पीछे सेना के अपने तर्क हैं। एक तरफ जहां आईटीबीपी एक सेंट्रल आर्म्ड पुलिस फोर्स है, वहीं असम राइफल्स विशुद्ध अर्ध सैनिक बल है, जो सेना को उसके अभियानों में मदद करता है। अगर असम राइफल्स का विलय किया जाता है, तो इंडियन आर्मी चीन के साथ लगी पूर्वी सीमा पर अपने पारंपरिक अभियानों में असम राइफल्स का इस्तेमाल कर पाने में सक्षम नहीं रहेगी। असम राइफल्स का महानिदेशक भारतीय सेना के अधिकारियों में से ही नियुक्त किया जाता है। इसलिए भी सेना कहीं न कहीं गृह मंत्रालय के विलय प्रस्ताव के खिलाफ है।

आईटीबीपी भारत-चीन युद्ध के बाद भारत-तिब्बत सीमा पर सुरक्षा की जरूरत के मद्देनजर अस्तित्व में आया था। इसे भारत-चीन की 3488 किलोमीटर लंबी अंतरराष्ट्रीय सीमा की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गई है। सीमा सुरक्षा के अलावा उसे काउंटर इन्सर्जेंसी अभियानों की भी भूमिका दी गई है। इसी क्रम में 2004 में सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश में सुरक्षा की जिम्मेदारी असम राइफल्स से आईटीबीपी को सौंपी गई थी। वर्तमान में जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश के सीमावर्ती इलाकों में इसे सुरक्षा दायित्व मिला हुआ है। यह सीमा अतिक्रमण की पहचान और नियंत्रण, अवैध प्रवासन, सीमापारीय तस्करी और अपराधों को नियंत्रित करने का कार्य करता है। इसके अलावा यह राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थापनों जैसे राष्ट्रपति भवन, उपराष्ट्रपति निवास, लबासना (मसूरी), रूमटेक मठ (सिक्किम) की सुरक्षा, संयुक्त राष्ट्र पीसकीपिंग मिशन, कैलास मानसरोवर यात्रा के दौरान सुरक्षा और प्राकृतिक आपदा राहत में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके हाल में चलाए गए ऑपरेशन डेयरडेविल ने विश्व समुदाय का ध्यान आकर्षित किया है। यानी आईटीबीपी की भूमिका अधिक विविधतापूर्ण है। पर असम राइफल्स का विशेष मकसद और अलग कार्यप्रणाली है। ऐसे में असम राइफल्स का आईटीबीपी में विलय कर दिया जाना कहां तक उचित होगा!

सेना के साथ समन्वय और सहयोग के जरिए ही भारत के भूक्षेत्र के अंतर्गत सामूहिक सुरक्षा के भावों का बीजारोपण संभव हो सकेगा। अगर केवल आईटीबीपी को अनन्य रूप से पूर्वोत्तर भारतीय सीमाओं खासकर म्यांमा सीमा की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी प्रस्तावित विलय के बाद मिल जाएगी, जो पहले से ही अलग-अलग किस्म के दायित्वों से संबद्ध है, तो क्या पूर्वोत्तर भारत की सुरक्षा रणनीति अचूक और मारक हो पाएगी!

किसकी कविता

अनुज राज पाठक

पिछले दिनों एक संगत में यह सवाल सामने आया कि हिंदी समाज अपने कवियों की परवाह नहीं करता। हालांकि मेरे मन में खयाल आता है कि हिंदी का कवि अपने पाठकों-श्रोताओं की कितनी परवाह करता है! मेरी राय में कुछ आग्रह हो सकता है और इसे मेरा पक्ष भर माना जा सकता है, लेकिन कई बार ऐसा महसूस हुआ कि आज का कवि बस कुछ भी लिख रहा है या अपना लिखा थोपने की कोशिश करता दिखता है। ऐसे कवि और कविता को समाज नकार देता है। जब बच्चन साहब ने 'मधुशाला' का प्रथम बार मंच पर पाठ किया, तभी से उनकी आलोचना शुरू हो गई। लेकिन उनके श्रोताओं ने उन्हें हिंदी का सिरमौर कवि बना दिया। सामाजिक और सहृदय के भीतर रसानुभूति पैदा हो, तभी काव्य की, कविता की सार्थकता है। काव्य का वास्तविक लक्ष्य रस का आस्वाद कराना है। बच्चनजी की 'मधुशाला' की लोकप्रियता की यही वजह है। यही कारण है कि आज भी लोग भूल जाते हैं कि 'मधुशाला' तो खय्याम ने लिखी थी, बच्चनजी ने तो हिंदी में उसका तर्जुमा भर किया था। जो रस न दे, यानी रसहीन हो, वह काव्य नहीं हो सकता। वह शब्द संयोजन मात्र रह जाता है।

उदाहरण के लिए, एक शब्द पर विचार करते हैं- 'डांस'। इसके लिए दो शब्द हैं- नृत्य और नृत्त। हालांकि प्रचलित नृत्य ही है। लेकिन नृत्य और नृत्त में एक मौलिक भेद है। नृत्य जहां अलौकिक आनंद की अनुभूति कराता है, वहीं नृत्त लौकिक प्रसन्नता का कारण बनता है। नृत्य शास्त्र का अनुसरण कर अभिनय प्रस्तुत करता है, वहीं नृत्त अंग विक्षेप मात्र है। मतलब अंगों को झटके देकर पटकना मात्र है। शादियों वाला जो नाच है, वह असल में नृत्त ही है, जो केवल ताल का आश्रय लेता है। नृत्य में भाव का आश्रय है नृत्त गात्रविक्षेप मात्र। ऐसा नहीं कि दोनों रस के उत्प्रेरक नहीं हैं। एक में शास्त्र का गौरव है, तो एक में लोक का आनंद है।

दुनिया मेरे आगे

कविता भी ऐसी ही है। उसका लक्ष्य केवल प्रसन्नता देना नहीं, बल्कि आत्मिक आनंद प्राप्त कराना होता है। कविता का वास्तविक प्रयोजन क्या है? कविता का जीवन तो उसमें विद्यमान रस में है। वह रस जो श्रोता, पाठक या सहृदय के हृदय में स्पंदन पैदा कर दे। अलौकिक आनंद से उसके हृदय को भर दे। वास्तव में काव्य का परीक्षक तो उसका श्रोता या पाठक ही होता है। वही बता सकता है कि कविता कैसी है। तुलसी, कबीर, मीरा, सूर को किसी आलोचना की जरूरत नहीं। उनकी कविता ने हजारों-लाखों रसिकों को दीवाना बना दिया है। बस घटित हो आनंद रस का पूर्ण परिपाक हो गया। जन-जन ने मुहर लगा दी। अब कोई आलोचना करे या कुछ भी करे। फिर भी शास्त्रीय दृष्टि से काव्य की विवेचना करें तो कहा जा सकता है कि व्यंजना शक्ति के अभाव में काव्य में आत्मा नहीं हो सकती। वह शब्द संयोजन शरीर मात्र है। उसमें स्पंदन नहीं, जीवन नहीं, अनुभूति नहीं।

दसवीं सदी के आसपास हुए अलंकार शास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान आचार्य कुंतक कहते हैं- 'सहृदयों को आह्लादित करने वाले सुंदर कवि व्यापार से युक्त रचना में समुचित रीति से स्थित साहित्य युक्त शब्दार्थ का नाम काव्य है।' क्या साहित्य काव्य से अलग है? इसके लिए कुंतक की ही उक्ति मार्गदर्शन करती है- 'सौंदर्याधान के लिए शब्द और अर्थ दोनों की एक-सी मनोहारिणी स्थिति का नाम साहित्य है।' जितने सुंदर अर्थ का वर्णन करना हो, उतने ही सुंदर शब्द का चयन करना चाहिए। इस प्रकार शब्द और अर्थ का नाम साहित्य है और साहित्य युक्त शब्द और अर्थ का नाम काव्य है। एक अर्थ में जहां सबका हित हो वह साहित्य।

जो कविता न सुंदर हो, न उसमें सुंदर शब्द हों, न सुंदर अर्थ हो और न उसमें समाज का हित हो, फिर कैसा काव्य, कैसी कविता? ऐसी कविता और ऐसा काव्यकर्म करने वाले कवि, दोनों की परवाह न होना तय है। काव्य में अगर रस ही न हो तो वह काव्य कैसे हो सकता है? रसानुभूति रूप काव्य का प्रयोजन ही नष्ट हो गया। ऐसी कविता का कोई फल नहीं रहा। कविता यश प्रदान करे, धन उत्पादक हो, लोक व्यवहार सिखाए, कल्याण करने वाली हो, आनंद की अनुभूति कराए, तभी उसका प्रयोजन सिद्ध होगा। यह विचार करने की जरूरत है कि आज के कवियों की कविता क्या इनमें से कुछ भी कराने में समर्थ सिद्ध हो रही है! ऐसी कविता अपने पाठक, श्रोता का समय नष्ट करने के सिवा उन्हें क्या कुछ दे पाती है?

आज समाज में कविता और कवि के सम्मान में अधोगति दिख रही है। खासतौर पर हिंदी का श्रोता और पाठक अपने कवि और कविता का प्रशंसक रहा है। वह अपने कवि को अपने मन में धारण किए चलने को बेकल रहता है, बशर्ते कि उसका कवि उस कविता के साथ आए, जो श्रोता सुनना चाहता है, जो उसे रस से आप्लावित कर सके। तब पाठक अपने कवि की न सिर्फ परवाह करेगा, बल्कि उसे सिर-आंखों पर बिठाएगा। वह अपने कवि से कहता है, तुम्हारी कविता ऐसी हो, जो मेरी कविता हो यानी पाठक की कविता हो।

जलवायु की सुध

आज दुनिया भयावह जलवायु परिवर्तन का सामना कर रही है। पर्यावरण पर खतरा तेजी से बढ़ता जा रहा है। दुनिया में पर्यावरण प्रदूषण से होने वाली मौतों के आंकड़ों में रोजाना बढ़ोतरी होने लगी है। दिल्ली जैसा महानगर विश्व के सबसे प्रदूषित शहरों में गिना जाने लगा है जहां स्वास्थ्य आपातकाल की स्थिति पैदा हो जाती है। देश की राजधानी में सांस तक लेना दुश्वार हो रहा है। ऐसे में अमेरिका का पेरिस जलवायु संधि से पीछे हटना बहुत चिंताजनक है। उसका यह कदम आने वाले समय में न केवल प्रदूषण, बल्कि पूरी दुनिया में जलवायु संकट में और ज्यादा वृद्धि करेगा।

जलवायु परिवर्तन संधि के दो प्रमुख मुद्दे थे- पहला, पूरी दुनिया में मौत बांटने वाली ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करना और दूसरा, वैश्विक तापमान में होने वाली बढ़ोतरी को दो डिग्री तक नीचे लाना। दुनिया जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली तापमान वृद्धि और ग्रीन हाउस गैसों के दुष्प्रभाव का सामना कर रही है। संयुक्त राष्ट्र भी बार-बार इस संकट की तरफ ध्यान दिलाता रहता है। वह उन विकसित देशों से ज्यादा आर्थिक मदद की गुहार करता रहता है जो इस भीषण संकट के लिए जिम्मेदार माने जाते हैं। आज जब जल, जंगल, जमीन, वायु, पहाड़, ग्लेशियर, नदियां, जीव-जंतु, पृथ्वी और मनुष्य सभी खतरे में हैं तो इन्हें बचाने की जिम्मेदारी अमेरिका जैसे विकसित देशों की भी है जिनका संधि के अनुसार पृथ्वी को बचाने में सबसे ज्यादा योगदान बनता है।

संयुक्त राष्ट्र के पास यदि जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने के लिए आर्थिक संसाधनों की कमी होगी तो पर्यावरण त्रासदी और भयावह हो सकती है। वित्तीय स्रोतों के अभाव में दुनिया में पर्यावरण संरक्षण की योजनाएं ठप्प पड़ सकती हैं जिसकी सबसे ज्यादा मार विकासशील और पिछड़े देशों के नागरिकों पर पड़ेगी जो पहले ही गरीबी, भुखमरी, बीमारी, बाढ़, अकाल, सूखा, जमीन कटाव और प्रदूषण से होने वाली समस्याओं से जूझ रहे हैं ।

अमेरिका के अलावा रूस, तुर्की, ब्राजील, इटली और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों का रवैया भी पेरिस जलवायु परिवर्तन संधि पर ढुलमुल रहा है। ऐसी स्थिति में अमेरिका, जो दुनिया में सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन करता है, अगर अपने राष्ट्रीय हितों और चुनावी राजनीति के नाम पर इस संधि से पीछे हटता है तो विश्व में न केवल पर्यावरण, बल्कि संपूर्ण मनुष्यता खतरे में पड़ जाएगी। इस संधि से पीछे हटने के लिए अमेरिका अपने राष्ट्रीय हितों का हवाला दे रहा है। उसका कहना है कि संधि को मानने से उसके नागरिकों और आर्थिक हितों को नुकसान होगा। कंपनियां बंद हो सकती हैं। अमेरिकी लोगों की नौकरी जा सकती है और अमेरिका का आर्थिक विकास प्रभावित हो सकता है। दुनिया में जलवायु परिवर्तन के संकट को अनदेखा करते हुए अपने आर्थिक हितों के नाम पर ट्रंप ने अपना अगला चुनावी कार्ड चल दिया है। बाकी देशों को अमेरिका पर दबाव बनाना चाहिए कि जलवायु परिवर्तन और राजनीति को आपस में न जोड़ें। पर्यावरण संकट पूरी दुनिया के लिए एक चुनौती बन रहा है। अमेरिका को अपने स्वार्थों से ऊपर उठ कर जलवायु परिवर्तन संधि को बचाना होगा वरना जब संकट आएगा तो अमेरिका भी कहां बचेगा!

● *बिजेंद्र कुमार, आंबेडकर कॉलेज, दिल्ली*

पक्षियों पर संकट

राजस्थान में पिछले दिनों सांभर झील में हजारों पक्षियों की मौत की खबर सुन कर मन दुखी हुआ। आखिर इतनी तादाद में पक्षियों की मौत कैसे हुई? उन बेजुबान पक्षियों का क्या दोष था? एक समय था जब सुबह उठते ही पक्षियों (गौरेया) की बोली सुनाई देती थी। आज कई पक्षी विलुप्त होने की कगार पर हैं। लिहाजा, जरूरत है कि पक्षियों के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाए।

● *पूनम चंद सीरवी, कुक्षी, मध्यप्रदेश*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

श्रमिकों के साथ

श्रमिक और नियोक्ता का संबंध इस देश में सिर्फ एक मालिक और नौकर जैसा है। मालिक चाहता है कि मजदूर का अधिकार कम से कम हो। उसे जितना कम मेहनताना दिया जा सके, दिया जाए। उसे यूनियनबाजी करने और हड़ताल पर जाने से रोका जाए। पार्टियां वोट लेने के लिए तो मजदूरों के दरवाजा खटखटाती हैं मगर श्रम कानून में बदलाव करते समय व्यापारियों और उद्योगपतियों के हितों का ध्यान रखती हैं। इसी के तहत केंद्र सरकार वे गुरुवार को इंडस्ट्रियल रिलेशन कोड बिल लोकसभा में पेश किया गया। अब स्थायी प्रवृत्ति के काम के स्थान पर नियोक्ता आपको एक सीमित अवधि के लिए काम पर रखेगा। ठेकेदारी प्रथा का अंत करने का दावा तो किया जा रहा है पर ठेकेदार की भूमिका में खुद नियोक्ता आ जाएगा। यानी स्थायी नौकरी का लाभ भी नहीं देना पड़ेगा और ठेकेदार को ज्यादा पैसा भी नहीं देना पड़ेगा। मतलब, कामगारों को यह कोड सिवाय आंसू के कुछ नहीं देगा। मालिक अब और अधिक मालामाल होंगे। मजदूर पहले से कहीं अधिक फटेहाल होगा।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

किसान की मजबूरी

दिल्ली के प्रदूषण में पराली के धुएं से होने वाले प्रदूषण की भागीदारी 44 फीसद है, जबकि 56 फीसद प्रदूषण दिल्ली के स्थानीय कारणों से है। इसके बावजूद पराली की राजनीति में किसानों को खलनायक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जा रही है और किसानों का दर्द समझने के लिए कोई तैयार नहीं है। दिल्ली सहित देश की तमाम शहरी आबादी के लिए अनाज यही किसान पैदा करते हैं। फसलों का लागत मूल्य बढ़ने और कम कीमत मिलने से किसान परेशान है। दूसरी तरफ बढ़ते कर्ज के कारण किसान आत्महत्या कर रहे हैं। खस्ता आर्थिक स्थिति के कारण खेतों में पराली जलाना किसानों की मजबूरी है, क्योंकि पराली से निकलने वाले धुएं का पहला हमला दिल्ली पर नहीं, बल्कि उन्हीं किसानों के परिवारों पर होता है जिनके खेतों में पराली जलती है। लेकिन उनकी मजबूरी है कि इसे जलाए नहीं तो क्या करें! किसान की मजबूरी समझने को कोई तैयार नहीं।

सच्चाई यह है कि धान की कटाई हाथ से कराने के लिए मजदूर मिलते नहीं हैं। हाथ से पराली की कटाई काफी महंगी भी पड़ती है। पराली में इतना ज्यादा कीटनाशक होता है कि किसान उसे हाथ से कटवाना नहीं चाहते और बाद में उसे चारे के तौर पर जानवरों को खिलाना भी खतरनाक होगा। इसलिए किसान सबसे आसान रास्ता जलाने का चुनते हैं। सरकार का हाल यह है कि वह किसानों की सीधी मदद करने के बजाय पराली प्रबंधन के विज्ञापनों पर करोड़ों खर्च कर देती है।

● *रितेश कुमार उपाध्याय, उत्तर प्रदेश*

www.readwhere.com